रिजर्व बैंक आफ इण्डिया

बनाम

एम. हनुमैया व अन्य

(सिविल अपील सं0 9/2008)

निर्णय की तारीख: 04 जनवरी 2008

पीठः न्यायाधिपति श्री जी.पी. माथुर व न्यायाधिपति श्री आफताब आलम

कर्नाटका सहकारी समिति अधिनियम, 1959

धारा 30 (5) - सहकारी बैंक की प्रबंधन समिति का अधिक्रमण - भारतीय रिजर्व बैंक के अनुरोध पर -सुनवाई का अवसर न देने पर चुनौती दी गयी - अभिनिर्णीत -धारा 30 की उपधारा (5) के अनुसार किसी सहकारी बैंक प्रबंधन समिति के अधिक्रमण की स्थिति होने पर कोई भी प्रभावित बैंक / उसकी प्रबंध समिति को सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है - बैंकिंग विनियमन अधिनियम -धारा 35 व 36 -प्रशासनिक कानून - प्राकृतिक न्याय -सुनवाई का अवसर।

अपीलार्थी भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिनांक 30.06.1994 को प्रत्यर्थी सहकारी बैंक (प्रत्यर्थी संख्या 16) का निरीक्षण किये जाने पर इसके कार्य में कई गम्भीर अनियमितताऐं पायी गयीं। अपीलार्थी ने प्रतिवादी सहकारी

बैंक के निदेशक मण्डल के सदस्यों को विभिन्न स्तरों पर चर्चा के कई दौर के लिए बुलाया और बार बार उनसे इसकी वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए कडी कार्यवाही करने का आग्रह किया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। अंततः, अपीलार्थी रिजर्व बैंक ने कर्नाटक सहकारी सोसायटी अधिनियम की धारा 30 (5) के अनुसार दिनांक 22.01.2022 को पंजीयक, सहकारी समिति को एक मांगपत्र जारी कर उसके द्वारा प्रतिवादी सहकारी बैंक के निदेशक मण्डल का अधिक्रमण करने व एक वर्ष के लिए प्रशासक नियुक्त करने की आवश्यकता बताई है। तदनुसार, पंजीयक, सहकारी समिति द्वारा दिनांक 31.01.2002 को प्रतिवादी सहकारी बैंक के निदेशक मण्डक का अधिक्रमण करने व इसके स्थान पर एक प्रशासक नियुक्त करने का आदेश जारी किया। उच्च न्यायालय के समक्ष उक्त आदेश को एक रिट याचिका में चुनोती दी गयी। एकल न्यायाधीश ने मुख्य रूप से यह कहते हुए आदेश को रद्द कर दिया क्योंकि उक्त आदेश को पारित करने से पूर्व सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था। रिजर्व बैंक द्वारा पेश की गयी रिट अपील के लम्बित रहने के दौरान यह इंगित किया गया कि प्रबंधन समिति के लिए नए चुनाव होना निर्धारित कर दिया गया था। तदानुसार, उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने रिट अपील को निष्फल माना। इससे व्यथित होकर भारतीय रिजर्व बैंक ने यह अपील पेश की।

अपील की सुनवाई के दौरान न्यायालय ने महसूस किया कि हालांकि प्रतिवादी सहकारी बैंक की प्रबंध समिति जिसके अधिक्रमण के लिए रिजर्व बैंक द्वारा कार्यवाही की गयी थी अब अस्तित्व में नहीं है, मामले में शामिल मुद्दे को निर्णीत करने की आवश्यकता है क्योंकि यह भविष्य में प्रतिवादी बैंक या अन्य सहकारी बैंक के सम्बन्ध में उत्पन्न होने की सम्भावना है। तदानुसार, न्यायालय ने अपने विचार करने हेतु यह प्रश्न बनाया कि ''क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत उस स्तर पर लागू होते हैं जब सहकारी समिति का पंजीयक, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा लिखित रूप में मांगे जाने पर एक सहकारी बैंक की प्रबंधन समिति को, ऐसी अवधि जो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती है, के लिए हटाने और उसके कार्यों के प्रबंधन के लिए एक प्रशासक नियुक्त करने का आदेश पारित करता है?

प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हुए और अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने यह अभिनिर्णीत किया:

1.1 कर्नाटक सहकारी समिति अधिनियम 1959 की धारा 30 की उपधारा (5) के अनुसार, भारतीय रिजर्व बैंक से लिखित में मांग पत्र प्राप्त होने पर, सहकारी बैंक की प्रबंधन समिति का अधिक्रमण का आदेश जारी करने के लिए सहकारी समति का पंजीयक वैधानिक रूप से बाध्य है। उस स्तर पर प्रभावित बैंक / उसकी प्रबंध समिति को सुनवाई या कोई आपत्ति करने का कोई अधिकारी नहीं है। (पैरा 18) (31-ए, बी)

1.2 अधिनियम की धारा 30 की उपधारा (1) लगायत (4) पंजीयक, सहकारी समिति के द्वारा एक सहकारी समिति की समिति को हटाने से सम्बन्धित है तथा उपधारा (5) भारतीय रिजर्व बैंक की मांग पर एक सहकारी बैंक की प्रबंध समिति का अधिक्रमण करने से सम्बन्धित है। यह देखा जाना चाहिए कि उपधारा (1) लगायत (4) के अनुसार किसी सहकारी समिति की समिति को हटाने के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन स्पष्ट रूप से आवश्यक है क्योंकि उपधारा (1) में यह निर्धारित किया गया है कि रजिस्ट्रार 'समिति को इसकी आपत्तियां जाहिर करने का अवसर देने के बाद ही' हटाने का आदेश पारित करेगा। दूसरी ओर, किसी भी सुनवाई की आवश्यकता उपधारा (5) में अनुपस्थित है जो एक ऐसे गैर-अवरोधक खण्ड से शुरू होती है जिसमें धारा 30 की पूर्ववर्ती उपधाराओं के प्रावधान भी शामिल हे। (पेरा-11) (24-सी, डी, ई)

जोसेफ कुर्नविला वेलुकुन्नेल बनाम रिजर्व बैंक आफ इण्डिया व अन्य, एआईआर 1962 एससी 1371- निर्भरता

ईश्वरदास प्रेमकुमार चोरडिया व अन्य बनाम स्टेट आफ महाराष्ट्र व अन्य, 2002 (2) एमएलजे 844 - अनुमोदित

वीरेन्द्र बनाम दि स्टेट आफ पंजाब, 1958 एससीआर 308 व महेन्द्र हुसनजी गडकरी बनाम स्टेट आफ महाराष्ट्र व अन्य, 1992 एमएलजे 1442 -संदर्भित

1.3 इस प्रकार, उच्च न्यायालय की एकल पीठ व खण्डपीठ द्वारा पारित दोनों आदेश काफी असमर्थनीय प्रतीत होते हैं और तदानुसार अपास्त किए जाते हैं। हालांकि, चूंकि मामला काफी पुराना है इसलिए यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि रजिस्ट्रार द्वारा पारित अधिक्रमण का आदेश दिनांक 31 जनवरी 2002 स्वतः ही पुनर्जीवित नहीं होगा, लेकिन यदि भारतीय रिजर्व बैंक की राय है कि स्थिति उचित होने पर वह रजिस्ट्रार सहकारी समितियों को नया मांगपत्र जारी करत सकती है जो उसके आधार पर, जैसा कि निर्णय में बताया गया है, अधिक्रमण का आदेश पारित करेगा। (पैरा 20) (31-ई, एफ)

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णय -सिविल अपील संख्या 9/2008

बैंगलोर में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा रिटी अपील संख्या 6160/2002 में पारित अंतिम निर्णय व आदेश दिनांक 03.03.2005 से उत्पन्न

अपीलार्थी की ओर से- आर.एन. त्रिवेदी, कुलदीप परिहार, श्वेता गर्ग व एच.एस. परिहार

प्रतिवादीगण की ओर से- ए. देब कुमार (के. राजीव के लिए)

न्यायालय का निर्णय जिसके द्वारा दिया गया - **आफताब आलम, न्यायाधीश**

अनुमति दी गयी।

2. क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत उस स्तर पर लागू होते हैं जब सहकारी समिति का पंजीयक, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा लिखित रूप में मांगे जाने पर एक सहकारी बैंक की प्रबंधन समिति को, ऐसी अवधि जो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती है, के लिए हटाने और उसके कार्यों के प्रबंधन के लिए एक प्रशासक नियुक्त करने का आदेश पारित करता है? यह वह प्रश्न है जो इस मामले में विचारणीय है।

3. जिन तथ्यों और परिस्थितियों में प्रश्न उठता है वे संक्षिप्त और सरल हैं और उन्हें इस प्रकार कहा जा सकता हैः

4. बैंकिंग विनियमन अधिनियम की धारा 56 सहपठित धारा 35 के तहत 30 जून 1994 को कालिदास सहकारी बैंक लिमिटेड (प्रतिवादी संख्या 16) (इसके बाद सहकारी बैंक या बैंक के रूप में जाना जावेगा) के निरीक्षण पर भारतीय रिजर्व बैंक (हमारे समक्ष अपीलकर्ता) ने इसके

मामलों में कई गंभीर अनियमितताएँ पाईं। इसने निरीक्षण रिपोर्ट की एक प्रति सहकारी बैंक को भेजी और रिपोर्ट के निष्कर्षों पर चर्चा के लिए इसके निदेशक मंडल के सदस्यों को बुलाया। इसने निरीक्षण रिपोर्ट की एक प्रति संयुक्त रजिस्ट्रार, सहकारी समितियों को भी भेज दी। संयुक्त रजिस्ट्रार ने रिजर्व बैंक को बैंक की प्रबंधन समिति का अधिक्रमण करने की मांग करने की सलाह दी। हालाँकि, रिजर्व बैंक ने उस संबंध में कोई कार्रवाई नहीं की, लेकिन बैंक के निदेशक मंडल के सदस्यों को विभिन्न स्तरों पर कई दौर की चर्चा के लिए बुलाया। निदेशक मंडल से बार-बार बैंक की वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए कड़े कदम उठाने का आग्रह किया गया। जाहिर है, कोई उपचारात्मक उपाय नहीं किया गया और सहकारी बैंक के मामले वित्तीय संकट की स्थिति में बने रहे। अंततः, रिजर्व बैंक ने 22 जनवरी, 2002 को रजिस्ट्रार सहकारी समितियों, कर्नाटक को एक मांग पत्र जारी किया, जिसमें उन्हें सहकारी बैंक के निदेशक मंडल को हटाने और कर्नाटक सहकारी समिति अधिनियम की धारा 30(5) के तहत एक वर्ष की अवधि के लिए एक प्रशासक नियुक्त करने की आवश्यकता जाहिर की। यह मांग सार्वजनिक हित में और बैंक के उन कार्यों को रोकने के लिए जो जमाकर्ताओं के हितों के लिए हानिकारक तरीके से संचालित हो रहे हैं और बैंक के उचित प्रबंधन को सुनिश्चित करने के लिए की गई थी।

5. रिजर्व बैंक द्वारा की गई मांग के अनुपालन में, रजिस्ट्रार सहकारी समितियों ने 31 जनवरी, 2002 को एक आदेश जारी कर बैंक के निदेशक मंडल को भंग कर दिया और उसके स्थान पर एक प्रशासक नियुक्त किया।

6. रजिस्ट्रार द्वारा जारी अधिक्रमण आदेश को रिट याचिका संख्या 6706/2003 (सीएस-आरईएस) में प्रतिवादीगण 2 से 13 (उस समय अस्तित्व में मौजूद सहकारी बैंक की प्रबंधन समिति के सदस्यों) द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। दिनांक 21 सितंबर, 2002 के आदेश द्वारा न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका को स्वीकार कर लिया गया। यह एक संक्षिप्त आदेश है जिसमें कर्नाटक सहकारी सोसायटी अधिनियम की धारा 30(5) में निहित प्रासंगिक प्रावधान पर ध्यान देने के बाद, विद्वान न्यायाधीश ने बस इस प्रकार टिप्पणी कीः

> ‘‘आदेश से, मुझे लगता है कि अधिक्रमण भारतीय रिजर्व बैंक के आदेश पर किया गया है क्योंकि इसका उल्लेख विवादित आदेश में किया गया है। इसके अलावा, सार्वजनिक हित में प्रबंधन समिति को अधिक्रमण करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए कारण का खुलासा आदेश में नहीं किया गया है। इसके अलावा, सहकारी बैंक द्वारा आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का कोई अवसर भी

नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप, मैं निम्नलिखित आदेश पारित करता हूँः

(ए) रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(बी) विवादित आदेश निरस्त किया जाता है।''

(महत्व दिया गया)

7. विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के विरूद्ध भारतीय रिजर्व बैंक ने रिट अपील संख्या 6120/2002 (सीएस-आरईएस) प्रस्तुत की। जब दिनांक 31 मार्च, 2003 को अपील पर सुनवाई हुई, तो अदालत को बताया गया कि प्रबंधन समिति के नए चुनाव 20 मार्च को होने थे। खण्डपीठ ने माना कि उनके इस विकास ने रिट अपील को निरर्थक बना दिया है और इसका निपटारा कर दिया। इस प्रकार, यदि आवश्यक हो, तो कानून के अनुसार, बैंक के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार रिजर्व बैंक पर छोड़ दिया गया है।

8. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.एन.त्रिवेदी ने यह कथन किया कि उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश और खण्डपीठ दोनों ने मामले में गंभीर गलती की है, विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्राकृतिक न्याय के तत्वों को पेश करके जहां कोई

अस्तित्व में नहीं था और खंडपीठ ने अपील को निरर्थक मानते हुए गलती की।

9. विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि खण्डपीठ ने मुख्य मुद्दे को नजरअंदाज कर दिया और यह समझने में विफल रही कि जब तक रजिस्ट्रार सहकारी बैंक को सुनवाई का अवसर देने के लिए बाध्य है तब तक यह कहना व्यर्थ है कि भारतीय रिजर्व बैंक के लिए कानून के अनुसार किसी बैंक के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए, यदि आवश्यक हो तो, यह खुला रहेगा। अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने दो आधारों पर अधिक्रमण आदेश को रद्द कर दिया था। पहला आधार तथ्यों पर गलत था और दूसरा कानूनी तौर पर त्रुटिपूर्ण था। यह कहना गलत है कि रजिस्ट्रार के आदेश में अधिक्रमण के कारणों का खुलासा नहीं किया गया है। आदेश के शुरूआत में कारण बताए गए थे। इसके अलावा, रिजर्व बैंक द्वारा की गई मांग में अधिक्रमण के कारणों को विस्तार से बताया गया था। लेकिन सहकारी बैंक को सुनवाई के अवसर के संबंध में यह दूसरा आधार था जो मौलिक रूप से खराब था क्योंकि यह बैंक की प्रबंध समिति के अधिक्रमण का प्रयोजन और उद्देश्य को विफल करने वाला था। विद्वान वकील ने कथन किया कि विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश वास्तव में रजिस्ट्रार के स्तर पर निर्णय की प्रक्रिया को जन्म देगा। दूसरे शब्दों में, रिजर्व बैंक जो बैंकिंग मामलों के संबंध में देश का सर्वोच्च

विशेषज्ञ निकाय है, को रजिस्ट्रार के पास जाना होगा और उसे बैंक के प्रबंधन का अधिक्रमण करने की आवश्यकता के बारे में संतुष्ट करना होगा। इससे भी बुरी बात यह है कि निर्णय की इस प्रक्रिया में कुछ सप्ताह का समय लग सकता है और इस प्रकार छोटे जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा के लिए रिजर्व बैंक द्वारा तत्काल हस्तक्षेप की आवश्यकता पूरी तरह से विफल हो जाएगी।

10. हम इस बात से संतुष्ट हैं कि श्री त्रिवेदी अपने कथन में सही हैं और यद्यपि सहकारी बैंक की प्रबंध समिति जिसके अधिक्रमण के लिए रिजर्व बैंक द्वारा कार्रवाई की गई थी, अब अस्तित्व में नहीं हो सकती है, मामले में शामिल मुद्दे पर निर्णय लेने की आवश्यकता है क्योंकि भविष्य में प्रतिवादी बैंक या अन्य सहकारी बैंकों के संबंध में इसके उत्पन्न होने की संभावना है।

11. प्रश्न की जांच करने के लिए कानूनी प्रावधान से शुरुआत करना सबसे अच्छा होगा। कर्नाटक सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1959 की धारा 30 इस प्रकार हैः

> "30. समिति का अधिक्रमण - (1) यदि, रजिस्ट्रार की राय में -

(ए) किसी सहकारी समिति की समिति इस अधिनियम या नियमों या उपनियमों द्वारा उस पर लगाए गए कर्तव्यों के पालन में लगातार चूक करती है या लापरवाही बरतती है या कोई ऐसा कार्य करती है जो समाज के हितों के लिए हानिकारक है, या इसके सदस्य, या अन्यथा ठीक से काम नहीं कर रहे हैं या

(बी) एक सहकारी समिति इस अधिनियम के प्रावधानों, नियमों या उपनियमों या राज्य सरकार या रजिस्ट्रार द्वारा जारी किसी आदेश या निर्देश, ''जिसमें धारा 30बी के तहत जारी निर्देश भी शामिल हैं'', के अनुसार कार्य नहीं कर रही है।

रजिस्ट्रार, समिति को अपनी आपत्तियां, यदि कोई हो, बताने का अवसर देने के बाद, लिखित आदेश द्वारा उक्त समिति को हटा सकता है और ऐसी अवधि के लिए जो छह महीने से अधिक नहीं हो, के लिए सोसायटी के कार्यों का प्रबंधन करने के लिए एक प्रशासक नियुक्त कर सकता है जैसा कि रजिस्ट्रार द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है। रजिस्ट्रार लिखित रूप से दर्ज किए जाने वाले कारणों से ऐसी नियुक्ति की अवधि को एक बार में छह महीने की

अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ा सकता है और किसी भी मामले में ऐसा विस्तार कुल मिलाकर एक वर्ष से अधिक नहीं होगा।

(2) इस प्रकार नियुक्त प्रशासक, रजिस्ट्रार के नियंत्रण और उसके द्वारा समय-समय पर दिए जाने वाले निर्देशों के अधीन, समिति के या सहकारी समिति के किसी भी पदाधिकारी के सभी या किसी भी कार्य का निष्पादन करेगा और ऐसी कार्रवाई करेगा जो वह समाज के हित में आवश्यक समझे।

(3) प्रशासक, अपने कार्यकाल की समाप्ति से पहले, इस अधिनियम, नियमों और सहकारी समिति के

उपनियमों के अनुसार चुनाव कराकर एक नई समिति के गठन की व्यवस्था करेगा।

बशर्ते कि ऐसे चुनाव में, उप-धारा (1) के तहत हटाया गया समिति का कोई भी सदस्य, इस अधिनियम, नियम या उपनियमों में किसी भी बात के बावजूद, उक्त उपधारा के तहत समिति के अधिक्रमण की तारीख से चार वर्ष की अवधि के लिए समिति के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए पात्र नहीं होगा।

(4) किसी सहकारी समिति के संबंध में उपधारा (1) के तहत कोई भी कार्रवाई करने से पहले, रजिस्ट्रार उन वित्तीय बैंकों से परामर्श करेगा जिनके वह ऋणी है।

(5) इस अधिनियम में कुछ भी निहित होने के बाबजूद, रजिस्ट्रार, सहकारी बैंक के मामले में, सार्वजनिक हित में या सहकारी बैंक के उन कार्यों को रोकने के लिए जो जमाकर्ताओं के हितों के लिए हानिकारक तरीके से संचालित हो रहे हैं या सहकारी बैंक के उचित प्रबंधन को सुनिश्चित करने के लिए, यदि रिजर्व बैंक द्वारा ऐसा लिखित में चाहा गया है तो, लिखित आदेश के द्वारा उस सहकारी बैंक की समिति को हटा सकता है और सहकारी बैंक के कार्यों के प्रबंधन के लिए ऐसी अवधि जो समय समय पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती है, प्रशासक नियुक्त कर सकता है''

(महत्वता दी गयी)

उपधारा (1) से (4) सहकारी समिति की समिति को हटाने से संबंधित है और उपधारा (5) सहकारी बैंक की प्रबंध समिति को अधिक्रमण करने से संबंधित है। यह देखा जाना चाहिए कि किसी सहकारी समिति की समिति को हटाने के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन

स्पष्ट रूप से आवश्यक है, क्योंकि उपधारा (1) में यह निर्धारित किया गया है कि रजिस्ट्रार समिति को अपनी आपत्तियाँ बताने का अवसर देने के बाद ही हटाने का आदेश पारित करेगा। दूसरी ओर, किसी भी सुनवाई की आवश्यकता उप-धारा (5) में अनुपस्थित है जो एक गैर-अस्थिर खंड से शुरू होती है जिसमें धारा 30 की पूर्ववर्ती उप-धाराओं के प्रावधान भी शामिल हैं। श्री त्रिवेदी ने प्रस्तुत किया कि सहकारी बैंक के प्रबंधन के अधिक्रमण के मामले में दो कारणों से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होते थे: एक यह था कि भारतीय रिजर्व बैंक बैंकिंग मामलों में देश का सर्वोच्च विशेषज्ञ निकाय था और एक बार जब भारतीय रिजर्व बैंक बैंक के प्रबंधन का अधिक्रमण करने की आवश्यकता के संबंध में संतुष्ट हो गया तो रजिस्ट्रार सहकारी समितियाँ, जिनके पास बैंकों के कार्याेंं का कोई अनुभव नहीं था, केवल रिजर्व बैंक के निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य था। दूसरा, एक बार अधिक्रमण का निर्णय लेने के बाद इसे शीघ्रता से प्रभावी करना आवश्यक था क्योंकि किसी भी देरी से बैंक के छोटे जमाकर्ताओं के हितों को अपूरणीय क्षति और नुकसान होगा। इसलिए, इस रूपरेखा के अनुसार उप-धारा (5) में सुनवाई के किसी अवसर का उल्लेख नहीं किया गया था, भले ही यह उसी धारा में पूर्व में (उप-धारा (1) में) निर्धारित किया गया था।

12. श्री त्रिवेदी ने प्रस्तुत किया कि इसी तरह का प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष तब उठा था जब *जोसेफ कुर्नविला वेलुकुनेल बनाम भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य (एआईआर 1962 एससी 1371*) के मामले में, जो पलाई सेंट्रल बैंक लिमिटेड, केरला के समापन से संबंधित है, बैंकिंग कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 38 की वैधता पर सवाल उठाया गया था। भारतीय रिजर्व बैंक ने पलाई सेंट्रल बैंक लिमिटेड को बंद करने और आधिकारिक परिसमापक की नियुक्ति आदि के लिए भारतीय कंपनी अधिनियम के कुछ संबद्ध प्रावधानों के साथ पठित बैंकिंग कंपनी अधिनियम की धारा 38 के तहत केरल उच्च न्यायालय में एक आवेदन किया। उच्च न्यायालय ने आवेदन स्वीकार कर लिया और उच्च न्यायालय के निर्णय को इस न्यायालय के समक्ष अपील में चुनौती दी गई जिसमें मुख्य प्रश्न बैंकिंग कंपनी अधिनियम की धारा 38 की संवैधानिक वैधता से संबंधित था। एक संविधान पीठ ने 3-2 के बहुमत से प्रावधान की वैधता को बरकरार रखा।

13. बैंकिंग कंपनी अधिनियम की धारा 38 इस प्रकार निर्धारित की गई हैः

"38(1). कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 391, धारा 392, धारा 433 और धारा 583 में कुछ भी निहित होने के बावजूद, लेकिन इस

अधिनियम की धारा 37 की उपधारा (1) के तहत अपनी शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उच्च न्यायालय एक बैंकिंग कम्पनी के समापन का आदेश देगा।

(ए) यदि बैंकिंग कंपनी अपने ऋण का भुगतान करने में असमर्थ है; या

(बी) यदि इस अधिनियम की धारा 37 के तहत रिजर्व बैंक द्वारा इसके समापन के लिए आवेदन किया गया है ।

(2) रिजर्व बैंक किसी बैंकिंग कंपनी को बंद करने के लिए इस धारा के तहत एक आवेदन करेगा यदि उसे धारा 35 की उपधारा (4) के खंड (बी) के तहत आदेश द्वारा ऐसा करने का निर्देश दिया गया हो।

(3) रिजर्व बैंक किसी बैंकिंग कंपनी को बंद करने के लिए इस धारा के तहत आवेदन कर सकता है -

xxxxxxxxxxxxxxx

(बी) यदि रिजर्व बैंक की राय में -

xxxxxxxxxxxxxx

(iii) बैंकिंग कंपनी का बने रहना उसके जमाकर्ताओं के हितों के लिए हानिकारक है।

14. श्री त्रिवेदी ने तर्क दिया कि पलाई बैंक के मामले का मुद्दा इस मामले के मुद्दे की तुलना में कहीं अधिक मौलिक और गंभीर था। पलाई बैंक में धारा 38 के प्रावधान ने उच्च न्यायालय के अधिकार और शक्ति को खत्म कर दिया और न केवल रजिस्ट्रार, सहकारी समितियों के, इसके अलावा, प्रावधान एक बैंकिंग कंपनी को बंद करने की अनुमति देता है और इस प्रकार व्यवसाय जारी रखने के मौलिक अधिकार में हस्तक्षेप करता है। इस मामले में सहकारी बैंक का कारोबार निर्बाध रूप से चलता रहेगा और हस्तक्षेप केवल बैंक के प्रबंधन तक ही सीमित रहेगा।

15. जिन आधारों पर धारा 38 की वैधता को चुनौती दी गई थी उनमें से एक यह था कि यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को ठेस पहुँचाता है। निर्णय के पैराग्राफ 30 से 31 में इस न्यायालय ने उन आधारों पर गौर किया है जिन पर प्रावधानों को चुनौती दी गयी थी और निम्नानुसार पाया गयाः

"(30)चुनौती का मुख्य आधार वह तरीका है जो धारा 38(1) व (3)(बी)(iii) उच्च न्यायालय के लिए, जब भी रिजर्व बैंक अपनी शक्तियों के तहत या केंद्र सरकार के आदेश के तहत किसी बैंकिंग कंपनी को बंद करने के लिए आवेदन करता है, एक बैंकिंग कंपनी को बंद करने का आदेश पारित करना अनिवार्य बनाता है। यह तर्क दिया गया कि रिजर्व बैंक को दी गई ऐसी शक्ति एक अनियंत्रित और निरंकुश शक्ति है और

सभी के लिए, न्यायालयों तक पहुंच संभव नहीं है क्योंकि न्यायालय को स्वयं यह तय किए बिना आदेश पारित करना होगा कि क्या बैंकिंग कम्पनी के मामले जमाकर्ताओं के हितों के लिए हानिकारक तरीके से संचालित किए जा रहे हे - यह तथ्य किसी भी अन्य तथ्य की तरह साबित होने में सक्षम है। सैद्धांतिक रूप से यह तर्क दिया गया कि कोई भी कानून जो न्यायालय के किसी निर्णय पर रोक लगाता है, वह बिना अधिक जानकारी के अपने आप में अनुचित है। श्री पाठक ने श्री नांबियार के उपरोक्त तर्कों के पूरक यह भी तर्क दिया कि उक्त प्रश्नगत कानून द्वारा एक न्यायिक प्रक्रिया को एक कार्यकारी कार्यवाही में बदल दिया गया है, और व्यक्तिपरक निर्धारण ने न्यायिक निर्धारण का स्थान ले लिया है। उनका यह भी तर्क रहा है कि रिजर्व बैंक एक बैंकिंग कंपनी पर आरोप लगाता है, और फिर इस मुद्दे को अदालतों से पूरी तरह बाहर करने की कोशिश करता है।

(31) इसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि किसी बैंकिंग कंपनी का समापन उच्च न्यायालय के समक्ष और कानून की प्रक्रिया के तहत होता है। न्यायिक प्रक्रिया को केवल इस महत्वपूर्ण निर्णय के सम्मान से बाहर रखा गया है कि क्या समापन आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं। यह राय रिजर्व बैंक पर छोड दी गयी, और न्यायालय केवल रिजर्व बैंक की राय के अनुसार एक आदेश पारित करता है, और फिर

कानून के अनुसार बैंकिंग कंपनी को बंद करने के लिए कार्यवाही करता है। संकीर्ण प्रश्न यह है कि क्या इस निर्णय को रिजर्व बैंक पर छोड़ने से कानून प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है और इतना अनुचित हो जाता है, जिसे अनुच्छेद 19 के आलोक में देखा जाए, तो यह शून्य हो जाता है। यही वह बिंदु है जिस पर संबंधित पार्टियां मुद्दे में शामिल हुईं और उनके पास कहने के लिए बहुत कुछ था, और यही इस मामले में महत्वपूर्णबिंदुहै।

(महत्व दिया गया)

दलीलों को खारिज करते हुए बहुमत निर्णय ने वीरेंद्र बनाम पंजाब राज्य (1958 एससीआर 308) के मामले में जिस पर अटॉर्नी जनरल ने भरोसा किया, इस न्यायालय के पूर्ववर्ती फैसले का उल्लेख किया और पैरा 44 और 45 में निम्नानुसार पाया गयाः

> ‘‘(44) ये टिप्पणियाँ स्पष्ट रूप से बताती हैं कि ऐसे अवसर और स्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें विधायिका, तर्क के साथ, यह सोच सकती है कि किसी मुद्दे का निर्धारण अदालतों के बजाय रिजर्व बैंक जैसे विशेषज्ञ कार्यकारी पर, कानून को शून्य घोषित किये जाने का दण्ड भुगते बिना, छोड़ा जा सकता है। इस प्रकार बनाया गया कानून कार्रवाई के संबंधित अवसरों से उत्पन्न होने वाली समीचीनता के

आधार पर उचित है। बेशक, न्यायालयों के बहिष्कार को हल्के में नहीं लिया जा सकता और न ही हल्के रूप से स्वीकार किया जा सकता है। कुल परिस्थितियों में ऐसे कानून की तर्कसंगतता को, यदि चुनौती दी जाती है, तो इस न्यायालय की अंतिम संतुष्टि के लिए बनाया जाना चाहिए और यह केवल तभी होगा जब यह न्यायालय माने कि यह व्यक्तिगत परिस्थिति में उचित है कि कानून को बरकरार रखा जाएगा।

(45) वर्तमान मामले में, भारत के लिए एक केंद्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक की स्थापना के इतिहास, एक बैंकर्स बैंक के रूप में इसकी स्थिति, भारत में बैंकिंग कंपनियों और बैंकिंग पर इसका नियंत्रण, जारीकर्ता बैंक के रूप में इसकी स्थिति, बैंकिंग कंपनियों को लाइसेंस देने और उनके लाइसेंस रद्द करने की इसकी शक्ति और कई अन्य शक्तियां को ध्यान में रखते हुए, यह निर्विवाद है कि अदालत और रिजर्व बैंक के बीच जमाकर्ताओं के हित में एक लड़खड़ाती या असुरक्षित बैंकिंग कंपनी को बंद करने का महत्वपूर्ण निर्णय उचित रूप से रिजर्व बैंक पर छोड़ दिया जाए। निःसंदेह, समय मिलने पर न्यायालय भी यह

कार्य कर सकता है। लेकिन निर्णय बिना किसी देरी के लिया जाना चाहिए, और रिजर्व बैंक पहले से ही बैंकिंग कंपनियों के मामलों को गहराई से जानता है और उनकी पुस्तकों और खातों तक उसकी पहुंच है।यदि न्यायालय को तत्काल कार्रवाई करने के लिए कहा जाता, तो वह लगभग हमेशा रिजर्व बैंक की राय से निर्देशित होता। यदि तत्काल कार्रवाई की मांग की गई तो रिजर्व बैंक के मार्गदर्शन के बिना न्यायालय के लिए किसी निष्कर्ष पर पहुंचना असंभव होगा। लेकिन रिजर्व बैंक की राय को भी यही स्थिति देने वाले कानून को अनुचित बताकर चुनौती दी गयी है। हमारी राय में ऐसी चुनौती में कोई दम नहीं है। इस मामले में जो स्थिति उत्पन्न हुई वह उन अवसरों के लिए विशिष्ट है जब इस असाधारण शक्ति का सामान्य रूप से प्रयोग किया जाएगा, और जैसा कि हमने पहले ही कहा है, यदि शक्ति का दुरुपयोग रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है, तो जो रद्द किया जाएगा वही रिजर्व बैंक की कार्रवाई होगी लेकिन कानून नहीं। रिजर्व बैंक की कार्रवाई के खिलाफ अपील या न्यायालय द्वारा पूर्वव्यापी खोज के प्रावधान की

शायद ही आवश्यकता है। केंद्र सरकार से अपील केवल सीजर से सीजर तक अपील होगी, क्योंकि रिजर्व बैंक शायद

ही केंद्र सरकार की सहमति के बिना कार्य करेगा और न्यायालय के निष्कर्ष का मतलब रमन नायर, न्यायाधीश के घोर वाक्यांश -बैंकिंग कंपनी के शव की पोस्टमार्टम जांच -को उधार लेना है''

(महत्व दिया गया)

पलाई बैंक के मामले में पारित निर्णय निस्संदेह इस मामले में अपीलकर्ता के तर्क का समर्थन करने के लिए एक लंबा रास्ता तय करता है।

16. श्री त्रिवेदी ने यह भी कहा कि महाराष्ट्र सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1960 की धारा 110-ए में कर्नाटक अधिनियम की धारा 30(5) के समान प्रावधान था। धारा 110-ए की उप-धारा (पप) में प्रावधान है कि बैंक को बंद करने का आदेश रजिस्ट्रार द्वारा दिया जाएगा, यदि जमा बीमा निगम अधिनियम, 1961 की धारा 13-डी में निर्दिष्ट परिस्थितियों में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा ऐसा आवश्यक हो। प्रावधानों से निपटते हुए बॉम्बे उच्च न्यायालय ने माना था कि महाराष्ट्र सहकारी सोसायटी अधिनियम की धारा 110-ए के तहत प्रदत्त शक्ति को कारण बताओ नोटिस की आवश्यकता को पढ़कर बाधित नहीं किया जाना चाहिए। विद्वान वकील ने हमारे सामने बाम्बे उच्च न्यायालय के दो निर्णयों का हवाला दिया, एक महेंद्र हुसनजी गडकरी बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य (1992 महा.ला.ज. 1442) में और

दूसरा ईश्वरदास प्रेमकुमार चोरडिया व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य (2002 (2) महा.ला.ज. 844) में। बाद के निर्णय में, बॉम्बे उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्णीत कियाः

"सवाल यह है कि: क्या महाराष्ट्र सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1960 की धारा 110-ए के तहत, प्रतिवादी संख्या 5 याचिकाकर्ताओं को कारण बताओ नोटिस देने के लिए विधिवत बाध्य था। प्रथमतः, अनुभाग कारण बताओ नोटिस का प्रावधान नहीं करता है। एक बार ऐसा होने पर, सवाल यह है कि: क्या कारण बताओ नोटिस के प्रावधान के अभाव में इसे निहित किया जा सकता है, क्या निहितार्थ यह आवश्यक है कि कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना चाहिए क्योंकि इसमें नागरिक परिणाम शामिल हैं। महाराष्ट्र सहकारी सोसायटी अधिनियम, 1960 की धारा 110ए की उप-धारा (3), महेंद्र हुसनजी बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1992 महा.ला.ज.1 442 के मामले में इस न्यायालय की एक खण्डपीठ के समक्ष विचार के लिए आई थी। इस न्यायालय की खण्डपीठ ने महाराष्ट्र सहकारी सोसायटी अधिनियम की धारा 110 ए की उप-धारा (3) के प्रावधानों

पर विचार करने के बाद माना कि भारतीय रिजर्व बैंक केवल तभी निर्देश जारी कर सकता है जब अधिनियम की धारा 110ए द्वारा विचार की गयी स्थिति मौजूद हो। जारी किए गए निर्देश रजिस्ट्रार पर बाध्यकारी हैं। दूसरे शब्दों में, एक बार जब भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा एक निर्देश जारी किया जाता है, तो रजिस्ट्रार के पास मामले में कोई विवेकाधिकार नहीं होता है, लेकिन उसे हटाकर एक प्रशासक नियुक्त कर सकता है। एक बार ऐसा हो गया, और चूंकि प्रतिवादी संख्या 5 में कोई विवेक नहीं बचा है, तो इसका मतलब यह होगा कि सुनवाई का अधिकार बाहर रखा गया है। एक बार ऐसा होने पर, आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी करने का कोई सवाल ही नहीं था। वास्तव में, हालांकि एल.वी. सास्माइल बनाम महाराष्ट्र राज्य 1992 सीटीजे 729 के मामले में यह सीधे तौर पर मुद्दा नहीं है, एक अन्य खण्डपीठ ने रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर विचार करते हुए, महाराष्ट्र सहकारी सोसायटी अधिनियम की धारा 110ए के तहत एक प्रशासक की नियुक्ति का निर्देश दिया था। इससे यह भी संकेत मिलेगा कि सुनवाई के लिए धारा 110 के तहत कोई आवश्यकता नहीं है।''

17. हमारी राय में बॉम्बे हाई कोर्ट ने मामले पर सही दृष्टिकोण अपनाया है।

18. अपीलार्थी के वकील श्री त्रिवेदी को सुनने और कानून के प्रासंगिक प्रावधानों और हमारे सामने उद्धृत निर्णयों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर हमें अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्कों को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। हम तदनुसार प्रश्न का उत्तर (निर्णय की शुरुआत में दिया गया है) नकारात्मक में देते हैं और मानते हैं कि भारतीय रिजर्व बैंक से लिखित में मांग प्राप्त होने पर रजिस्ट्रार सहकारी समितियां वैधानिक रूप से इसके अधिक्रमण का आदेश जारी करने के लिए बाध्य हैं। उस स्तर पर प्रभावित बैंक/इसकी प्रबंध समिति को सुनवाई या कोई आपत्ति उठाने का कोई अधिकार नहीं है।

19. यहां सवाल उठ सकता है कि क्या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को पूरी तरह से प्रक्रिया से बाहर रखा गया है या यह मांग के खिलाफ हो सकता है, प्रभावित बैंक स्वयं रिजर्व बैंक का रुख कर सकता है और यह दिखाने की कोशिश कर सकता है कि वह अपने अधिक्रमण के निर्णय पर गलत तरीके से पहुंचा था। दूसरा रास्ता यह हो सकता है कि रजिस्ट्रार द्वारा अधिक्रमण आदेश जारी किए जाने के बाद इसे कानून की अदालत में चुनौती दी जा सकती है और उस कार्यवाही में आदेश को चुनौती देने का एक आधार यह हो सकता है कि रिजर्व बैंक का निर्णय प्रभावित सहकारी

बैंक को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना किया गया था। हालाँकि, हम उस प्रश्न पर जाने से बचते हैं क्योंकि यह वर्तमान मामले के तथ्यों में नहीं उठता है।

20. ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, विद्वान एकल न्यायाधीश और खण्डपीठ द्वारा पारित दोनों आदेश काफी अस्थिर प्रतीत होते हैं। तद्नुसार दोनों आदेश निरस्त किये जाते हैं। हालाँकि, चूंकि मामला काफी पुराना हो गया है, इसलिए यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि 31 जनवरी, 2002 को रजिस्ट्रार द्वारा पारित अधिक्रमण का आदेश स्वतः रूप से पुनर्जीवित नहीं होगा, लेकिन यदि भारतीय रिजर्व बैंक की राय है कि स्थिति उचित है जो यह रजिस्ट्रार सहकारी समिति, कर्नाटक को एक नया मांगपत्र जारी कर सकता है, जो उस आधार पर निर्णय में दिए अनुसार अधिक्रमण का आदेश पारित करेगा।

21. तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है लेकिन व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया है।

अपील स्वीकार की गयी।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री अतुल कुमार सक्सेना (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।